हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी समुदाय का चित्रण (1919–2010 तक)

*डॉ. राजेश कुमार मीना

आदिवासी समाज का इतिहास बहुत प्राचीन रहा हैं। यह इतना ही प्राचीन हैं जितना मानव इतिहास। आज के गैर–जनजातीय लोग प्रायः आदिवासी समाज और संस्कृति से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, जिसके कारण उन्हें आदिवासी समाज के प्रति गलत धारणाओं और सूचनाओं ने घेर लिया हैं। अब तक लोग आदिवासियों को बर्बर और जंगली समझते रहे हैं। वास्तव में अपने को सभ्य समझने वाले कुंठित मानसिकता से ग्रसित लोगों ने स्वयं ही आदिवासियों के प्रति गलत धारणाएं प्रचारित–प्रसारित कर अज्ञानता का परिचय दिया हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 77 वर्षों बाद भी विश्व के विकसित देशों में अपना स्थान प्रतिष्ठापित करने की चाह रखने वाले भारत में, आज भी आदिवासी समाज के लोग अशिक्षित, उपेक्षित, शोषित, अभिशप्त एवं हाशिए की जिन्दगी व्यतीत कर रहें हैं। दुःखद बात है कि हमारे संविधान में नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए एक से बढ़कर एक अधिनियम तो बनाए गए हैं लेकिन जब उन अधिनियमों को आदिवासी समाज पर क्रियान्वित करने का समय आता हैं, तो वे अधिनियम महज छलावा साबित होते हैं। आदिवासियों के लिए जल, जंगल, जमीन के हक का नारा सदैव धोखा साबित हुआ हैं। सम्पूर्ण भारत में आदिवासी समाज की संख्या लगभग 8 करोड़ से ऊपर हैं। ये देश की जनसंख्या के लगभग 7–8 प्रतिशत हैं। मौटे तौर पर देखा जाए तो देश के 72 प्रतिशत वन्य और प्राकृतिक संसाधन, 90 प्रतिशत कोयला–खदान तथा 80 प्रतिशत खनिज संपदा केवल आदिवासी क्षेत्र में ही मौजूद हैं। उसके बावजूद आज भी 85 प्रतिशत आदिवासी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने के लिए मजबूर हैं। आदिवासियों के पारम्परिक व्यवसाय, संस्कृति, बोली, भाषा–लिपि, धर्म, इतिहास और भारत की स्वतंत्रता में दिए गए उनके योगदान तथा मानव विकास में भागीदारी आदि से आज भी अपरिचित हैं। एक ऐसा समुदाय जो आज भी इस आधुनिक दुनिया में हाशिए का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। उसके सम्पूर्ण जीवन की तपस्या को असुर, राक्षस आदि कहकर भुला दिया गया हैं।

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी समुदाय

भारत विभिन्न समुदायों का देश हैं। मानव विज्ञान के अध्येताओं ने अपने–अपने अध्ययनों के माध्यम से आदिवासी समुदाय के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां दी हैं। वर्तमान में आदिवासी विमर्श एक ज्वलंत विषय हैं। आदिवासियों से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण हिन्दी उपन्यास इस प्रकार हैं– मनमोहन पाठक (गगन घटा घहरानी, 1991), संजीव (पांव तले की दूब, 1995), मैत्रेयी पुष्पा (अल्मा कबूतरी, 2000), भगवानदास मोरवाल (रेत, 2008), रणेंद्र (ग्लोबल गांव के देवता, 2009)। इन उपन्यासों में जल, जंगल और जमीन से विस्थापित हो रहे आदिवासियों के प्रतिरोध, जनजीवन और अस्मिता के मूलभूत प्रश्न तथा जनजातीय समूहों की तमाम समस्याओं को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया हैं।

(अ) आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक व्यवस्था

कोई भी देश या समाज बिना सामाजिक व्यवस्था के चल नहीं सकता। समाज स्त्री और पुरूष दो वर्गों से मिलकर चलता हैं। ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिनसे समाज का निर्माण होता हैं। दोनों के सद्भाव और समन्वय से परिवार तंत्र की संरचना होती हैं। इसके बिना मानवीय अस्तित्व संभव नहीं हैं।

श्यामचरण दुबे लिखते हैं– ''ये नियंत्रण किस तरह लागू किये जाते हैं यह बहुत कुछ सामाजिक संरचना, निर्धारित भूमिका, नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक नियंत्रण की कठोरता अथवा लचीलेपन पर निर्भर करता हैं। स्त्री–पुरूष सम्बन्ध के समीकरणों का निर्माण तथा राजनीतिक शक्तियों की परस्पर क्रिया पर निर्भर करता हैं।'' [1]

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में स्त्री और पुरूष के सम्बन्ध को बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं। परन्तु इसमें पुरूष का सम्बन्ध स्त्री के जिस्म तक ही सीमित दिखाया गया हैं। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में स्त्री की पुरूषवादी मानसिकता को बेहतर ढंग से दिखाया गया हैं। मंशाराम द्वारा किया गया कदमबाई का बलात्कार दर्शाता है कि छल–छद्म पुरूषों को खूब आता हैं। ''उस दिन कदमबाई का मन चिथड़े–चिथड़े हो गया। मन में एक ही बात आई– अपना पेट फाड़ डाले और निकालकर फेंक दे वह अंश, जो अपनी दुनिया रचेगा। कदमबाई जान गई कि आगोश में कौन आया था, कि जंगलियों के आने की बात कौन जानता था ?''[2]

भारत में दो प्रकार के परिवार पाए जाते हैं। एकल परिवार और संयुक्त परिवार। व्यक्ति से ही परिवार का निर्माण होता हैं और सामाजिक संरचना का विकास होता हैं। परिवार मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था हैं। विभिन्न सभ्यताओं में परिवार अभिन्न इकाई के रूप में दिखाई देता हैं। मानव का जन्म से लेकर मृत्यु तक का सफर परिवार संस्था से होकर गुजरता हैं। परिवार के सम्बन्ध में कहा जा सकता है – ''परिवार के भीतर के व्यक्तिगत सम्बन्धों को उस रूप में देखा जा सकता हैं। जिनका सम्बन्ध माता–पिता और पुत्र, भाई–बहन, सास–बहू, पति–पत्नी तथा जीजा–साली, देवर–भाभी के बीच पारिवारिक हो।''[3]

इस आधार पर कहा जा सकता है कि परिवार एक बहु प्रचलित शब्द हैं जिसे लोग सामान्य अर्थ के रूप में प्रयुक्त करते हैं। परिवार समाज में विस्तृत फलक तैयार करते हुए एक ऐसी सामाजिक संस्था का निर्माण करता हैं। जिसमें वैवाहिक सम्बन्ध, प्रजनन प्रक्रिया, आवास, आर्थिक विकास तथा घरेलू सहयोग आदि प्रमुख रूप से शामिल होते हैं। आदिवासी समाज में अधिकतर संयुक्त परिवार प्रथा का ही प्रचलन हैं। कई आदिवासी उपन्यासों में संयुक्त परिवार का जिक्र किया गया हैं। 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में लालचन दा के परिवार का वर्णन इस प्रकार से किया गया हैं– ''लालचन दादा का परिवार, रूमझुम से बड़ा था। लालचन के आयो बाबा, छोटे भाई बालचन, रामचन और उनकी बहुएं और सबके दो–दो, तीन–तीन बच्चे। लालचन की दो बेटियां कविता–नमिता तो मेरे ही स्कूल में पढ़ती थी। डे–स्कालर थी। घर से ही आती–जाती। बेटा रमेश सखुआपाट के हाई स्कूल में था। लालचन के बाबा अम्बटोली गांव के बैगा थे। ऐसे भी बड़े प्रभावी मातबर आदमी थे। असुर समाज में उनकी बड़ी इज्जत थी।''[4]

आदिवासी समाज में एकल या संयुक्त परिवारों को एक समूह के रूप में देखा जा सकता हैं। 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में गांव में रहने वाले आदिवासी परिवारों का वर्णन लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया हैं– ''गांव क्या मुश्किल से आठ दस घरों का समूह, फूस अथवा खपरैल। सभी घर साफ–सुथरे, लिपे–पुते। कोस– दो–कोस की परिधि में वैसे चार–पांच गांव मिल जायेंगे। इन गांवों में आकर लगेगा, दुनिया इतनी ही बड़ी हैं।''[5]

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी संस्कृति

भारत बहुसंस्कृतियों वाला देश हैं। जहां पर अनेक छोटी–बड़ी संस्कृतियां प्रत्येक समाज में पाई जाती हैं। अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द हिंदी में संस्कृति का पर्याय हैं। जिसकी उत्पति 'संस्कार' शब्द से हुई हैं। आदिवासी समाज में बहु संस्कृतियों का समावेश हैं। इनके यहां रीति–रिवाज और कुलवंश परम्परा का चित्रण सबसे ज्यादा मिलता हैं। इनके वहां तो पेड़–पौधों, फूल–पत्तों, जानवरों आदि के नाम पर वंश (टोटम) परम्परा हैं। इनका जुड़ाव हमेशा प्रकृति से ही रहा हैं। हम कह सकते है कि जमीन से जुड़े हुए आदिवासी समाज के लोग हैं। नृत्य और संगीत उनकी रगों में दौड़ता हैं। आदिवासी हिंदी उपन्यासों में जनजाती की सांस्कृतिक विरासत के बारे में वर्णन मिलता हैं। उनके

रहन–सहन, खान–पान, बौद्विक आचार–व्यवहार पर उपन्यासों में बेहतर तरीके से विवेचित किया गया हैं। गगन घटा घहरानी उपन्यास में आदिवासी समाज के भोजन–प्रक्रिया पर बात की गयी हैं। पैरू की स्त्री जागो और पैरू को बोलती हैं– ''खाना भी खाओगे या दारू ही ढालते रहोगे। नहीं खाना था तो फिर बनवाया ही क्यों ? पेट में भात के लिए जगह बची हो तो उठो बहुत अबेर हो गयी हैं।''[6]

आदिवासी समाज जल, जमीन और जंगल पर ही निर्भर हैं। इसके कारण उनके खान–पान के संसाधन भी कम हैं। उसे जंगल में निहित फल और पत्तों से ही अपना जीवन गुजारना पड़ता हैं। आदिवासी समुदाय के जीविका का साधन मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। जैसैः– 1. शिकार 2. खाद्य संग्रहण 3. मछली पकड़ना आदि। आदिवासी समाज में मछली पकड़ने की प्रथा पुरानी रहीं हैं। 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में मछली पकड़ने का वृतांत कुछ इस प्रकार से हैं– ''दूसरे किनारे पर की सीमा के बाहर में मिट्टी काटने से एक अलग गड्डा बन गया हैं पानी उथला हैं। छोटे–छोटे नंग–धड़ंग बच्चे गड्डे में मेड़ बांधकर पानी उलीच रहे है। कोई आरी छिपा से, तो कोई डिब्बा–डिब्बी से। कई लड़के काले–काले कादो में घुटने भर डूब कर हाथ से टो–टो कर गरई, पोठिया मछलियां पकड़ रहे हैं।''[7]

भारत में रहने वाले सभी समुदायों में सामान्य तौर पर देवी–देवताओं की पूजा होती हैं। हिन्दू धर्म में राम,कृष्ण,विष्णु, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश इत्यादि की पूजा होती हैं, ठीक उसी प्रकार से आदिवासी समाज में लोक देवी–देवताओं की पूजा की जाती हैं।

(स) आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासियों की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी समाज की समस्याओं को बखूबी व्यक्त किया गया हैं। आधुनिक परिवेश से अलग इनकी अपनी जनजातीय संस्कृति हैं। परम्पराओं के संवर्धन में इनके यहां दोषों का परिवर्धन नहीं हो सका, जिसकी वजह से आज इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हैं। जैसे स्त्री–पुरूष एवं शिशु सम्बन्धी समस्या, शिक्षा की समस्या, आर्थिक समस्या, चिकित्सीय समस्या, धार्मिक एवं अंधविश्वास की समस्या, पीढ़ियों का द्वंद्व आदि।

आदिवासी समाज को आर्थिक स्थिति के आधार पर हम कई भागों में विभक्त कर सकते हैंः–

1 भोजन एकत्रित करने के सन्दर्भ में शिकार एवं मछली को पकड़ना

2 चरागाह

3 पशुपालन

4 कृषि एवं व्यापार

5 लघु उद्योग के आधार पर

आदिवासी जातियों का मुख्य धारा में विलय

आदिवासी समाज की समस्याओं का समाधान मुख्य धारा में विलय करने से हो सकता है। आदिवासी समाज पहाड़ों, गुफाओं, जंगलों में निवास करने वाली बहुसंख्यक जनजाति हैं। आज भी ये लोग आधुनिक समाज से कोसों दूर हैं। सरकार की सुविधाओं से वंचित हैं। पूर्वोत्तर भारत के घने जंगलों में पारम्परिक तरीके से जीवन निर्वाह कर रहे ये आदिवासी शोषण के शिकार से मुक्त नहीं हो पाये हैं। अब सवाल यह उठता है कि आखिर किस प्रकार से सभी

जनजातीय समाज को मुख्य धारा में लाया जाए। आधुनिक सन्दर्भ में सरकार के समक्ष यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं। आदिवासी समाज को मुख्यधारा में शिक्षा के आधार पर, वैवाहिक सम्बन्ध के आधार पर, भेदभावपूर्ण नीति को समाप्त करके, सम्मानपूर्ण दृष्टि के आधार पर, प्रोत्साहन एवं संरक्षण के आधार पर लाया जा सकता हैं।

निष्कर्ष

आदिवासी समाज का सर्वाधिक पिछड़ेपन का कारण अशिक्षा हैं। पहाड़ों, जंगलों के बीच रहकर वह अपनी परम्पराओं, लोक विश्वासों को जीवित रखे हुए हैं। अब मुख्यधारा में शामिल हो चुके आदिवासी समाज के लोग अपने समाज से कटकर रहने लगे हैं। सरकार की उपेक्षा और मूलभूत सुविधाओं से वंचित होने से आज भी ये लोग पिछड़ेपन के शिकार हैं। सरकार को आदिवासियों की समस्याओं की तरफ ध्यान देना चाहिए, तभी उनका समुचित विकास हो पायेगा।

***सहायक आचार्य**
हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय
सवाईमाधोपुर (राज.)

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः—

1 भारतीय समाज— दुबे, श्यामचरण, नेशनल बुक ट्रस्ट, छठी आवृत्ति, 2014, पृष्ठ— 99

2 अल्मा कबूतरी— पुष्पा, मैत्रेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2000, पृ. 23

3 भारतीय समाज— दुबे, श्यामचरण, नेशनल बुक ट्रस्ट, छठी आवृत्ति, 2014, पृष्ठ— 63

4 ग्लोबल गांव के देवता— रणेंद्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण— 2011, पृ.—23,24

5 गगन घटा घहरानी— पाठक मनमोहन, कतार प्रकाशन, धनबाद, सं. 1991, पृ.—8

6 वही, पृ. 12

7 वहीं, पृ. 94